प्राकृत अध्यात्म-काव्य के आलोक में शुद्धात्म-तत्त्व का तात्त्विक एवं शास्त्रीय अनुशीलनः 'शुद्धात्म-स्तुति' के विशेष सन्दर्भ में

लेखकः डॉ. आशीष जैन आचार्य 'शाहगढ़'
(राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त)
महामंत्री, प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री – अ.भा.दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

शोध-सार

भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चेतना में प्राकृत जैन स्तुति -साहित्य एक महनीय प्रस्थान-बिन्दु है। जैनाचार्यों ने भक्तिपरक स्तुतियों को मात्र पूजा-अर्चना तक सीमित न रखकर उन्हें सूक्ष्म तत्त्वमीमांसा और आत्मानुभूति का सर्वोत्कृष्ट माध्यम बनाया है। इसी आध्यात्मिक धारा का एक मूर्धन्य प्रतिनिधि ग्रन्थ 'शुद्धात्म-स्तुति' (सुद्धप्प-त्थुदि) है। २८ गाथाओं में निबद्ध यह ग्रन्थ संसारी आत्मा के कर्मबद्ध रूप का निषेध करते हुए उसके नित्य, शुद्ध, निरुपद्रव एवं कर्मरहित परमार्थ स्वरूप को उद्घाटित करता है। प्रस्तुत शोध -आलेख में 'शुद्धात्म-स्तुति' का समग्र तात्त्विक , तार्किक, भाषिक एवं साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ में प्रतिपादित नयवाद(निश्चय, व्यवहार, द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, अभेदनय), अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद (अस्ति-नास्ति-अवक्तव्यता भंग), तथा शुद्ध अर्थक्रिया एवं सर्वगत ज्ञान की अवधारणाओं का तर्क एवं आगम की कसौटी पर सांगोपांग अनुशीलन किया गया है। साथ ही , प्राकृत भाषा की सूत्रात्मक अभिव्यंजना , छंद-योजना और सुव्यवस्थित पारिभाषिक शब्दावली का शास्त्रीय विश्लेषण करते हुए इसकी अद्वितीय दार्शनिकता को सिद्ध किया गया है।

मुख्य शब्द :- शुद्धात्म-स्तुति, सुद्धप्प-त्थुदि, प्राकृत अध्यात्म , नयवाद, निश्चयनय, स्याद्वाद, अनेकान्तवाद, अर्थक्रिया, सिद्धावस्था, ईषत्प्राग्भार।

❖ प्रस्तावनाः प्राकृत स्तुति-साहित्य और शुद्धात्म-वाद

जैन स्तुति -साहित्य का मूल उत्स वीतराग चेतना की आराधना में निहित है। जहाँ लौकिक साहित्य में स्तुति का आशय किसी बाह्य सत्ता या देवता की चाटुकारिता अथवा भौतिक सुखों की याचना होता है , वहीं जैन अध्यात्म-परम्परा में स्तुति का अभिप्राय 'गुणानुराग' और 'स्व-स्वरूप की

जागृति' है। प्राकृत भाषा इस आध्यात्मिक सन्देश की सर्वोत्कृष्ट वाहिका रही है। प्राकृत के जैन स्तुति-काव्य में हमें भक्ति और दर्शन का एक ऐसा अपूर्व समन्वय देखने को मिलता है , जहाँ वीतरागता की स्तुति अन्ततः वीतरागी आत्मा की स्तुति बन जाती है।

इसी परम्परा में 'शुद्धात्म-स्तुति' (सुद्धप्प-त्थुदि) एक विलक्षण ग्रन्थ है। इसका मूल आकर्षण यह है कि इसका लक्ष्य किसी बाह्य अवतार, पौराणिक चरित्र अथवा तीर्थंकर के इतिहास का गुणगान करना नहीं है, बल्कि प्रत्येक जीव के भीतर विराजमान परम ज्योतिर्मय, शुद्ध और शाश्वत 'शुद्धात्मा' की वन्दना करना है। ग्रन्थ की प्रत्येक गाथा का प्रारम्भ सुद्धप्पं सय वंदे जैसे वन्दना-वाक्य से होता है, जो यह स्पष्ट करता है कि यहाँ स्तुति और ध्याता दोनों अभेद रूप में परिणत हो रहे हैं। यह ग्रन्थ साधना के उस धरातल पर प्रतिष्ठित है जहाँ कर्म की सत्ता का पूर्ण ह्रास होकर केवल परम चैतन्य स्वभाव शेष रह जाता है।

❖ 'शुद्धात्म-स्तुति' का दार्शनिक ढांचा एवं नय-मीमांसा

जैन तत्त्वज्ञान में वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिए नय (विवक्षा या दृष्टिकोण) को अनिवार्य साधन माना गया है। 'शुद्धात्म-स्तुति' में द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, निश्चय, व्यवहार और अभेद नय के माध्यम से शुद्धात्मा के स्वरूप को अत्यन्त तार्किक रूप से स्थापित किया गया है।

- द्रव्यार्थिक एवं पर्यायार्थिक नयः नित्यता बनाम अनित्यता

आत्मा का अस्तित्व तीनों कालों में कैसा है? इस गम्भीर दार्शनिक प्रश्न का समाधान ग्रन्थकार द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय की वैज्ञानिक योजना से करते हैं-

- द्रव्यार्थिक दृष्टिः- द्रव्य की अपेक्षा से आत्मा सदा नित्य, अपरिवर्तनशील और शाश्वत है।

सुद्धप्पं सय वंदे, णिच्चरूवं चिय दव्वदिट्ठीए।

णेव उप्पज्जइ णस्सइ, कया वि कत्थवि य केरिसं वि॥१७॥

भावार्थः- द्रव्यदृष्टि (द्रव्यार्थिक नय) से नित्यरूप शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ। वह आत्मा कभी भी, कहीं भी और किसी भी प्रकार से न तो उत्पन्न होती है और न कभी नष्ट होती है।

- **पर्यायार्थिक दृष्टि :- इसके विपरीत , पर्यायार्थिक नय यह स्पष्ट करता है कि वस्तु में परिवर्तनशीलता भी एक सत्य है , किन्तु शुद्धात्मा की पर्यायें संसारी जीवों की भाँति अशुद्ध नहीं होतीं :-**

सुद्धप्पं सय वंदे, अत्थिरूवं(अणित्त) पज्जयदिट्ठीए।

पडिसमए परिबट्टइ, णियमादो सुद्धरूवेण॥१८॥

भावार्थः- पर्यायदृष्टि से अस्थिर या अनित्यरूप शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ। उस शुद्धात्मा में नियम से प्रतिसमय केवल 'शुद्ध रूप' में ही परिणमन (उत्पाद-व्यय) होता रहता है [७, ८]।

यह विवेचन सिद्ध करता है कि जैन दर्शन की परिणमनशीलता जड़-स्थिरता का निषेध करती है। शुद्धात्मा यदि नित्य है , तो वह कूटस्थ (सर्वथा अपरिवर्तनशील) नहीं है; उसमें प्रतिसमय शुद्ध पर्यायों का उत्पाद और व्यय होता है, जिसके कारण उसमें शुद्ध अर्थक्रिया चलती रहती है।

- **निश्चय एवं व्यवहार नयः अभेद बनाम भेद**

ग्रन्थकार ने निश्चयनय (शुद्धनय) और व्यवहारनय की विवक्षा से शुद्धात्मा के गुणों का सूक्ष्म प्रतिपादन किया है:-

- **व्यवहार नय :- संसारी जीवों को समझाने के लिए और भेद -निरूपण के लिए व्यवहारनय उपयोगी है:-**

सुद्धप्पं सय वंदे, बहुभेदरूवं च ववहारेण।
अण्णाणं जीवाणं, णिमित्तभूर्द दु सुद्धीए॥१९॥

भावार्थः- व्यवहार नय से अनेक भेद -रूप (जैसे दर्शन , ज्ञान, चरित्र आदि भेदों से युक्त) तथा अज्ञानी/संसारी जीवों की शुद्धि (कल्याण) के लिए निमित्तभूत शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

- **निश्चय नय / शुद्ध नय :- परमार्थ दृष्टि से आत्मा अखण्ड चैतन्यपिण्ड है , उसमें कर्मजन्य अशुद्धता की कोई शक्ति कभी विद्यमान नहीं रही:-**

सुद्धप्पं सय वंदे, सुद्धसत्तिरूपं सुद्धणयेण।
अणादीदु णो अप्पा, असुद्धसत्तियुत्तो कया वि॥२०॥

भावार्थः- शुद्धनय (निश्चयनय) की दृष्टि से केवल शुद्ध शक्तिरूप शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ। शुद्धनय से यह आत्मा अनादिकाल से कभी भी अशुद्ध शक्ति से युक्त नहीं हुई है।

❖ **शुद्धात्मा का निषेधात्मक एवं विधायक स्वरूप**

'शुद्धात्म-स्तुति' में शुद्धात्मा का निरूपण दो रूपों में किया गया है : निषेधात्मक और विधायक।

- **निषेधात्मक निरूपण (अ-परभाव निषेध)**

आत्मा को पर-द्रव्यों और कर्मजन्य विकारों से सर्वथा पृथक सिद्ध करने के लिए ग्रन्थकार कई निषेधात्मक विशेषणों का प्रयोग करते हैं:-

1. **कर्मत्रय रहितता (गाथा 1): शुद्धात्मा ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म , शरीरादि नौकर्म और राग - द्वेषादि भावकर्मों से सर्वथा रहित है ।**
2. **पूरण-गलन रहितता (गाथा 22): पुद्गल द्रव्य का मूल स्वभाव 'पूरण' (मिलना) और 'गलन' (बिछुड़ना) है। शुद्धात्मा इस पूरण-गलन स्वभाव से सर्वथा हीन है।**
3. **भव्यत्व-अभव्यत्व रहितता (गाथा 21): यह एक अत्यंत क्रांतिकारी आध्यात्मिक घोषणा है:-**

सुद्धप्पं सय वंदे, भव्वत्त- अभव्वत्तविवज्जिदं दु।
पुण्णरूवेण सुद्धो, असक्को होदुं असुद्धो॥२१॥

भावार्थः- जो भव्यत्व और अभव्यत्व जैसी संसार -सापेक्ष शक्तियों (पारिणामिक भाव के भेदों) से भी परे (रहित) है, पूर्ण रूप से शुद्ध है और अशुद्ध होने में जो सदा असमर्थ /अशक्य है, उस शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

- **विधायक निरूपण (स्वभावगत गुण-सम्पदा)**

शुद्धात्मा केवल शून्य या अभाव रूप नहीं है, वह अनन्त गुणों का पुंज है :-

1. **अस्तित्व गुण (गाथा 2): वह अनादिकाल से अस्तित्ववान (अस्ति-रूप) है और कभी नष्ट नहीं होता।**

2. **शुद्ध अर्थक्रिया (गाथा 3): उसमें केवल शुद्ध अर्थक्रिया (अर्थात् परिणमन की स्वगत समर्थ क्रियाशीलता) होती है; अशुद्ध अर्थक्रिया तीनों कालों में असम्भव है।**

3. **अगुरु-लघु गुण (गाथा 6): वह अगुरु-लघु गुण से युक्त होने के कारण अपनी अनन्त शक्तियों को स्थिर रखता है और अन्य द्रव्यों के गुणों से सदा भिन्न रहता है।**

4. **अभेदात्मक अखण्डता (गाथा 8, 24): असंख्यात प्रदेशी होने पर भी आत्मा में कोई खण्ड या भेद नहीं किया जा सकता; वह निश्चय से सदा अखण्ड है।**

सुद्धप्पं सय वंदे, अभेदरूपं हु अभेदुणयेण।
जस्स खंडो ण सक्को, कत्थवि कयावि हु केरिसं वि॥२४॥

भावार्थः- जो अभेदनय से सदा अभेदरूप है, जिसका कभी भी, कहीं भी और किसी भी प्रकार से खण्ड (विभाजन) किया जाना सम्भव नहीं है, उस शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ।

❖ **स्याद्वाद, अनेकान्तवाद एवं अवक्तव्यता का शुद्धात्मा पर अनुप्रयोग**

'शुद्धात्म-स्तुति' की गाथा ९ से १५ तक जैन दर्शन के प्राणभूत सिद्धान्त स्याद्वाद का आत्मा पर अनुप्रयोग किया गया है। यह निरूपण आगमिक तार्किकता का सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है।

- **अस्ति-नास्ति धर्मों का सह-अस्तित्व**

आत्मा में अनन्त धर्म युगपत निवास करते हैं। स्व-चतुष्टय (स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव) की अपेक्षा आत्मा 'अस्ति' रूप है और पर-चतुष्टय की अपेक्षा 'नास्ति' रूप है।

- **अस्ति धर्म विवक्षा (गाथा 9):- 'अस्ति' (अस्तित्व) धर्म की मुख्यता से देखने पर शुद्धात्मा में किंचित् भी नास्तिपना (गैर-अस्तित्व) नहीं दिखाई देता।[1]**

- **नास्ति धर्म विवक्षा (गाथा 10):- 'नास्ति' (नास्तित्व) धर्म की विवक्षा से आत्मा में नास्ति-रूप अनन्त धर्म हैं, जो स्याद्वाद की कसौटी पर सदा सिद्ध होते हैं।[2]**

[1] अत्थि-रूवेणेकधम्मसंजुत्तं, णो किंचिवि णत्थित्तं तम्मि॥
[2] अत्थि-रूवेणेकधम्मसंजुत्तं, णत्थिधम्मेण सिय सिद्धि॥

- **अस्ति-नास्ति धर्म (गाथा 11):- आत्मा में स्व और पर की अपेक्षा से युगपत् अस्ति -नास्ति रूप अनन्त विरोधी प्रतीत होने वाले धर्म अत्यन्त सुसंगत रूप से विद्यमान हैं।[3]**

- **अवक्तव्यता का तार्किक विवेचन**

जब हम आत्मा के अस्ति और नास्ति धर्मों को एक साथ एक ही समय में कहना चाहते हैं, तब भाषा की मर्यादा आड़े आती है। वचन -वर्गणा में यह सामर्थ्य नहीं है कि वह अनन्त धर्मात्मक तत्त्व को एक समय में पूर्णतः अभिव्यक्त कर सके। इसी को जैन दर्शन में 'अवक्तव्य' कहा गया है। ग्रन्थकार इसे गाथा १२ से १५ में अत्यन्त तार्किक रूप से स्थापित करते हैं

- **वक्ता के वचनों की मर्यादा (गाथा 12): शुद्धात्मा वक्ताओं के वचनों के लिए सदा अगोचर है, क्योंकि एक समय में भाषा द्वारा सम्पूर्ण धर्मों का कथन असम्भव है।**

- **छद्मस्थ की सीमा (गाथा 13): अल्पज्ञानी (छद्मस्थ) जीव एक समय में चैतन्यादि अनन्त धर्मों का निरूपण नहीं कर सकते।**

- **नास्ति-अवक्तव्य (गाथा 14): नास्ति रूप अनन्त धर्मों का एक साथ कथन अशक्य होने से आत्मा 'नास्ति-अवक्तव्य' कहलाती है।**

- **उभय-अवक्तव्य (गाथा 15):-**

सुद्धप्पं सय वंदे, अत्थि- णात्थिरूव- अणंतधम्मयुदं।
असक्कं सव्वकथणं, समयएगे उभय- अवत्तव्वं॥१५॥

भावार्थः- अस्ति-नास्ति रूप अनन्त धर्मों से युक्त शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ। एक समय में उन सभी का युगपत कथन करना चूंकि सर्वथा अशक्य है , अतः वह शुद्धात्मा उभय -अवक्तव्य रूप है।

❖ **सिद्धावस्था की तात्त्विक परिणति एवं अष्टगुण मीमांसा**

ग्रन्थ की अन्तिम गाथाओं (२६ से २८) में शुद्धात्मा के चरम और परम विकसित रूप अर्थात् सिद्धावस्था का अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं आगम-सम्मत वर्णन किया गया है।

---

[3] अत्थि-णत्थि-अवेच्छाए, अप्पम्मि अणंतधम्मे जं॥५॥

- **सिद्ध परमेष्ठी के लक्षण (गाथा 26-27)**

सिद्ध दशा में आत्मा शरीर और संसार के बन्धनों से सर्वथा मुक्त होकर लोक के शिखर पर आरूढ़ हो जाती हैः-

- **अशरीरीः- औदारिक, वैक्रियिक आदि पांचों शरीरों से रहित।**
- **लोकशिखरवासीः- तीन वातवलयों के पार लोक के अग्रभाग (तनुवातवलय के अंत में) स्थित सिद्धशिला पर निवास।**
- **अनाहारकः- कवलाहार और नोकर्माहार से सर्वथा मुक्त।**
- **निकलः- कलाओं (अवयवों/शरीर) से रहित अथवा निष्कल [११]।**
- **परम विशुद्ध एवं अचलः- अनन्त काल तक अपनी उसी शुद्ध अवस्था में स्थिर रहने वाले।**
- **भव्यजन-सिद्धि-हेतु (गाथा 27): सिद्ध भगवान यद्यपि स्वयं निष्कर्म और अक्रिय हैं, तथापि संसारी भव्य जीवों के लिए वे मोक्षमार्ग के प्रदर्शन में निमित्त-कारण (सिद्धि-हेतु) बनते हैं।**

- **अष्टगुण एवं अष्टम पृथ्वी का रूपक (गाथा 28)**

ग्रन्थकार ने अन्तिम गाथा में अष्ट गुणों और अष्टम पृथ्वी का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया हैः-

सुद्धप्पं सय वंदे, सम्मत्ताइ- अट्ठगुणसंजुत्तं।
वसुवसुहं पावेदुं, गुणवसुं रइदं सुद्धप्पं॥२८॥

भावार्थः- सम्यक्त्व आदि आठ गुणों (सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, व्याबाधत्व) से संजुक्त शुद्धात्मा की मैं सदा वन्दना करता हूँ। 'वसु वसुधा' (अर्थात् आठवीं पृथ्वी—ईषत्प्राग्भार या सिद्धशिला) और 'वसु गुण' (आठ गुणों) की प्राप्ति के लिए 'शुद्धात्म' (सुद्धप्पं) नामक इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

यहाँ 'वसु' शब्द का द्वित्व प्रयोग (वसुवसुहं और गुणवसुं) अत्यधिक काव्यात्मक और दार्शनिक हैः-

1. **वसु वसुधा :- आठ पृथिवियों में अन्तिम आठवीं पृथ्वी जो सिद्धशिला है।**
2. **गुण वसुः- सिद्धों के आठ मूल गुण इस प्रकार ग्रन्थ की पूर्णता सिद्धावस्था के महामङ्गलकारी अष्टगुणों के साक्षात्कार के साथ होती है।**

❖ **भाषिक वैशिष्ट्य, छंद-विधान एवं साहित्यिक सौंदर्य**

'शुद्धात्म-स्तुति' केवल एक गहन दार्शनिक ग्रन्थ नहीं है , बल्कि साहित्यिक दृष्टि से भी यह प्राकृत काव्य-परम्परा का एक अनमोल रत्न है।

- **पुनरावृत्ति और लयात्मकता का सौंदर्य**

ग्रन्थ की प्रत्येक गाथा में आने वाला महावाक्य सुद्धप्पं सय वंदे एक ओर जहाँ काव्य में अद्भुत गेयता और लयात्मकता उत्पन्न करता है , वहीं दूसरी ओर ध्याता के चित्त को निरन्तर आत्म -लीनता की ओर आकृष्ट करता है। यह पुनरुक्ति दोष नहीं है , अपितु भक्ति और ध्यान की वह पराकाष्ठा है जहाँ चित्त बार-बार अपने परम ध्येय 'शुद्धात्मा' पर एकाग्र होता है।

- **प्रमुख पारिभाषिक शब्दों की विश्लेषणात्मक तालिका**

ग्रन्थ में प्रयुक्त महत्वपूर्ण प्राकृत दार्शनिक शब्दों और उनके संस्कृत -हिन्दी अर्थों को निम्न सारणी के माध्यम से समझा जा सकता है:-

प्राकृत रूप	संस्कृत समतुल्य	दार्शनिक एवं व्यावहारिक अर्थ
सुद्धप्पं	शुद्धात्मानम्	संसारी उपाधियों से रहित विशुद्ध चैतन्य तत्त्व।
दव्वकम्मादो	द्रव्यकर्मतः	ज्ञानावरणादि आठ भौतिक कर्मों से रहित।
देहाइणोकम्मादु	देहादिनोकर्मतः	स्थूल, वैक्रियिक आदि शरीरादि परपदार्थ।
रायादिकम्मादो	रागादिकर्मतः	मोह, राग, द्वेष आदि वैभाविक भावकर्म।
अत्थ-किरिया	अर्थक्रिया	वस्तु का प्रयोजनभूत कार्य (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य)।
अगुरुलहु-गुणं	अगुरुलघु-गुणः	वह गुण जिसके कारण द्रव्य का

		अस्तित्व स्थिर रहता है।
अभेद-असंखपदेसी	अभेद-असंख्यातप्रदेशी	असंख्यात प्रदेशों वाला होने पर भी अखण्ड स्वभाव।
वयणगोयरं	वचनगोचरम्	वचनों के द्वारा कहे जाने की सीमा से परे होना।
छदुमत्थेहिं	छद्मस्थैः	केवली से भिन्न अल्पज्ञानी जीव (१-१२ गुणस्थान)।
भव्वत्त-अभव्वत्त	भव्यत्वाभव्यत्व	मोक्ष प्राप्ति की योग्यता और अयोग्यता की शक्ति।
वसुवसुहं	वसुवसुधाम्	सिद्धशिला या आठवीं पृथ्वी (ईषत्प्राग्भार)।

❖ उपसंहार

आचार्य वसुनन्दि मुनिराज (अथवा ग्रन्थ के अज्ञात परम अध्यात्मवेत्ता कर्ता) की 'शुद्धात्म-स्तुति' प्राकृत अध्यात्म-काव्य का एक ऐसा शिखर है, जो आगम की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है। ग्रन्थ की २८ गाथाएँ साधक को बहिरात्मा से अन्तरात्मा होते हुए सीधा परमात्मा (सिद्धात्मा) बनने का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

स्याद्वाद और नयवाद के वैज्ञानिक प्रयोग ने इस स्तुति को केवल अन्ध -श्रद्धा की वस्तु न बनाकर एक सुव्यवस्थित दार्शनिक प्रबन्ध बना दिया है। संक्षेप में कहें , तो 'शुद्धात्म-स्तुति' प्राकृत जैन साहित्य की वह ज्ञानमयी सरिता है , जिसमें गोता लगाकर प्रत्येक जिज्ञासु अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर सकता है और अन्ततः 'वसु वसुधा' (सिद्धलोक) में अष्टगुणों की पूर्णता को प्राप्त कर सकता है।

❖ सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

1. शुद्धात्म-स्तुति (सुद्धप्प-त्थुदि), मूल प्राकृत गाथाएँ एवं हिन्दी भावार्थ।
2. समयसार, आचार्य कुन्दकुन्द विरचित , आत्मख्याति टीका सहित , श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास।
3. नियमसार, आचार्य कुन्दकुन्द विरचित , मुनि पद्मप्रभ मलधारिदेव कृत तात्पर्यवृत्ति टीका सहित, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली।

4. **तत्त्वार्थसूत्र, आचार्य उमास्वामी विरचित, सर्वार्थसिद्धि टीका सहित, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली।**

5. **प्रवचनसार, आचार्य कुन्दकुन्द देव विरचित , तत्त्वप्रदीपिका टीका सहित , परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई।**

6. **आलापपद्धति, देवसेन आचार्य कृत, जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी।**